आयुर्वेद का एक संग्रहग्रन्थ 'प्रतापसागर'

गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
अध्यक्ष, राज. आयु. वि. परिषद्

वीरों और भक्तों की वसुन्धरा वाला राजस्थान सदैव से ही शक्ति और भक्ति का उपासक रहा है। यहाँ शास्त्र और शस्त्र दोनों को ही महत्त्व दिया गया है। यहाँ रणक्षेत्रों में केवल रणहुंकार और अस्त्र-शस्त्रों की खनखनाहट ही नहीं गूंजी अपितु साहित्य एवं संगीत की स्वर लहरियाँ भी ध्वनित हुई है।

इस राजस्थान प्रान्त की राजधानी गुलाबी नगर जयपुर है, जिसकी शोभा वर्णन करते हुये 'जयपुरवैभवम्' के रचयिता श्री मञ्जुनाथ जी ने लिखा है-

उत्तुङ्गपुरगोपुरनिवेशविशालवीथिभृतोद्भवा,
श्रेणीनिबद्धसुचारुविपणिथेषु जनकलकलरवा।
नृपाटवी किं विकङ्कचारुचतुष्पदीरचितोत्सवा,
जहति तुलां जगतीतले जयतीह जयनगरी नवा[1]।।

इस जयपुर नगर के संस्थापक थे-सवाई जयसिंह। सवाई जयसिंह का जन्म 3 नवम्बर सन् 1688 में हुआ और निधन 21 सितम्बर 1743 को हुआ था। अपने पिता आमेर के राजा विशनसिंह की मृत्यु के समय ये जयसिंह मात्र 11 वर्ष के थे। इन्होंने जयपुर नगर की स्थापना 18 नवम्बर 1727 ईस्वी को पंडित जगन्नाथ सम्राट के सान्निध्य में नवग्रहपूजन के साथ करवाई थी। राज्य के कुशल शिल्पी दीवान विद्याधर और आनन्दराम मिस्त्री के सहयोग से इस नगर का वास्तु के अनुसार नक्शा तैयार किया गया था। पुर्तगाल, का परिनक्स तथा गैलिलियो के इमानुएल से भी इस बारे में राय-मशविरा किया गया था। दो लाख की आबादी के लिये बनाये गये इस शहर के लिये चीन इराकी टाउन प्लानिंग तथा शिल्पियों की भी मदद ली गयी थी।

सवाई जयसिंह के कुल 26 रानियाँ थी, किन्तु वे सुखकँवर नामक रानी से विशेष प्रेम करते थे और उससे उत्पन्न पुत्र ईश्वरीसिंह को ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे, जबकि अनुबन्ध के अनुसार महारानी चन्द्रकुँवर के पुत्र माधोसिंह (प्रथम) का इस राजगद्दी पर हक बनता था। सवाई जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् 22 सितम्बर 1743 को ईश्वरी

सिंह जयपुर गद्दी पर बैठा किन्तु अपने मामा मेवाड़ के महाराजा जगतसिंह के नेतृत्व में माधोसिंह के युद्ध छेड़ देने के कारण अपने को चारों तरफ से असहाय मान कर ईश्वरीसिंह ने विषपान कर आत्महत्या कर ली। इनकी मृत्यु 23 दिसम्बर 1750 को हुई। इस प्रकार ईश्वरीसिंह केवल 7 वर्ष ही शासन कर पाये। आखिर 10 जनवरी 1751 को माधोसिंह (प्रथम) जयपुर के महाराजा बन गये, जिन्होंने 17 वर्षों तक राज किया। सन्1768 में माधोसिंह के पुत्र पृथ्वीसिंह को राजगद्दी पर बिठाया गया, किन्तु राज्य का सारा कार्य पृथ्वीसिंह की सौतेली माता चूण्डावतजी ही देखती थी क्योंकि उस समय पृथ्वीसिंह मात्र पाँच वर्ष का बालक था। 15 वर्ष की उम्र में ही उसकी मृत्यु हो जाने के पश्चात् माजी चूण्डावतजी का पुत्र प्रतापसिंह 1778 में जयपुर का राजा बनाया गया।

जिस समय सवाई प्रतापसिंह जयपुर की राजगद्दी पर बैठे, उस समय आयु मात्र 13 वर्ष की थी। ऐसी स्थिति में उनकी माता चूण्डावतजी बालक राजा की संरक्षक एवं अभिभावक बनी रही। छोटी उम्र में बड़ी जिम्मेदारी संभालने वाले इस शासक ने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये, वे चिरस्मरणीय रहेंगे। आप एक कुशल शासक के साथ ही भक्त कवि के रूप में विख्यात हुये। आप के दीक्षा गुरु जगन्नाथ भट्ट थे। आप संगीतप्रेमी भी थे। इस क्षेत्र में आपके उस्ताद चाँद खाँ थे जो बुधप्रकाश के नाम से जाने जाते थे। आपने काव्यकला को नवीन रूप दिया। कविता के क्षेत्र में आपने अपना नाम 'ब्रजनिधि' रखा था। भाषा ब्रजभाष जू है ब्रजभूषन भगवान' को ध्यान में रखते हुये आपने अधिकतर सृजन ब्रजभाषा में ही किया। ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि भिखारीदास ने स्पष्ट कहा है, कि ब्रजभाषा में रचना करने के लिये ब्रजवासी होना आवश्यक नहीं है-

ब्रजभाषाहेत ब्रजवास ही न अनुमानौ

ऐसे ऐसे कविन की बानी हूँ सौं जानिये[2]।

आपने कुल 22 ग्रन्थ लिखे, जिनमें ब्रजनिधि मुक्तावली और ब्रजनिधि पदसंग्रह मुख्य हैं। आपने भर्तृहरि के शतकत्रय का भी ब्रजभाषा में पद्यानुवाद किया। आप प्रतिदिन पाँच नये पद रच कर अपने इष्टदेव गोविन्ददेव तथा ठाकुर ब्रजनिधि जी को (ब्रजनिधिजी के नाम से जो मन्दिर बना हुआ है) समर्पित करते थे।

आपने काव्यकला के साथ ही स्थापत्य कला को भी विकसित किया। जयपुर का हवामहल आपने ही बनवाया था। आप उसमें बैठ कर ही प्रायः कविता किया करते थे। इसके अतिरिक्त आप केवल कलम के ही धनी नहीं थे, अपितु तलवार के भी धनी थे। सन् 1787 में आपने लालसोट के पास तूंगा की लड़ाई में महादजी सिन्धिया जैसे नामवर मरहठा सेनापति को हरा कर राजस्थान के वीर योद्धाओं में अपना नाम जुड़वाने में सफल रहे।

राजस्थान के राजाओं में मुख्यतः तीन भक्त हुये। प्रथम मेड़ता के राव जयमल जी, जो भक्तिमती मीरा के भाई थे।ये किशनगढ़ (अजमेर) के राजा थे। सवाई प्रतापसिंह जितने घनानन्द कवि से प्रभावित थे, उतने ही नागरीदास जी से भी थे और यह संयोग ही था, कि जिस वर्ष नागरी दास जी का निधन हुआ, उसी वर्ष ब्रजनिधि जी का जन्म हुआ था।

सवाई प्रतापसिंह का आयुर्वेद के प्रति भी बहुत अनुराग था। आयुर्वेद के ग्रन्थों का भी आप अध्ययन करते रहते थे। आयुर्वेद के विद्वानों का आप बहुत आदर करते थे। उस समय अहमदाबाद में राजा महता की पोल में गोविन्दरामजी व्यास के पुत्र प्रभुराम जी निवास करते थे। इन प्रभुराम जी के पुत्र लक्ष्मीराम जी व्यास थे, जो एक ख्यातिप्राप्त कुशल वैद्य थे। महाराजा सवाई प्रतापसिंह ने उन लक्ष्मीराम जी को जयपुर बुलवाया और उनकी आजीविका का पूरा प्रबन्ध किया। श्री लक्ष्मीराम जी भट्ट यहाँ जयपुर में भागवत की कथा करते थे और चिकित्सा भी करते थे। आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित, भट्ट व्यास मेवाड़ा जातीय गुर्जर गौड़ ब्राह्मण श्री लक्ष्मीराम जी ने जयपुर नगर में आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति का प्रचार-प्रसार किया। आप ही के वंश में हुये वैद्यों ने इस विद्या को और अधिक यहाँ प्रचारित किया। यावन्मात्र वैद्य इन्हीं के पुत्र-पौत्रादिकों के शिष्य प्रशिष्य माने जाते हैं।

इन वैद्य श्रीलक्ष्मीराम जी भट्ट की प्रेरणा से ही और इनकी देखरेख में ही 'अमृतसागर' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा गया, जो आयुर्वेद साहित्य की अभिवृद्धि करने वाला है। पं. श्री हनुमान शर्मा (चौमूं) के अनुसार इस ग्रन्थ का लेखक स्वयं महाराज प्रतापसिंह को ही बतलाया है, परन्तु विद्वद्वर पुरोहित श्री हरिनारायण जी विद्याभूषण ने इसे अनेक वैद्यों द्वारा संग्रहित ग्रन्थ बताया है। यही बात मुरादाबाद निवासी शालिग्रामौषधशब्दसागर के लेखक श्री शालिग्राम ने भी अपने इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखी है - 'महाराजाधिराज श्रीमान् सवाई प्रतापसिंह जयपुर निवासी के नाम से प्रतापसागर (अमृतसागर) नाम से वैद्यों ने ग्रन्थ लिखकर प्रसिद्ध किया, यह इस देश के पंडितों का ही प्रताप था।[3]

डा. प्रभाकर शर्मा शास्त्री (पूर्व प्रवक्ता, संस्कृत विभाग डूंगर कॉलेज बीकानेर) ने लिखा है कि पुरोहित हरिनारायणजी के अनुसार यह ग्रन्थ अमृतसागर के नाम से प्रथम संस्कृत में बना था और फिर इसका हिन्दी (ब्रजभाषा) में अनुवाद हुआ। यह वैद्यक का बहुत उपयोगी तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है। मेरी दृष्टि में यह ग्रन्थ प्रथमतः एक ही भाषा में लिखा गया है और वह है प्रारम्भिक हिन्दी जिसमें ब्रजभाषा का पुट मिलता है। इसी ग्रन्थ के दो नाम हैं - अमृतसागर और प्रतापसागर। यदि इससे अतिरिक्त कोई ग्रन्थ मूल संस्कृत भाषा में लिखा राजकीय पुस्तकालय में विद्यमान हो, तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लोक में इसका भाषात्मक रूप ही प्रचलित है। इससे सामान्यतः वे चिकित्सक लाभान्वित हुये हैं, जिन्होंने चरक-सुश्रुत आदि ग्रन्थ नियमतः गुरुमुख से नहीं पढ़े हो। यों इस ग्रन्थ का विषय वैद्यों के अनुभव से परिपूर्ण माना गया है।[4]

मेरे पास पूज्य पिता श्री वैद्य रघुनाथ प्रसाद जी द्वारा प्रदत्त यह ग्रन्थ विद्यमान है जो हस्तलिखित ग्रन्थ की तरह छपा हुआ ग्रन्थ है, जिस पर अमृतसागर तथा प्रतापसागर ये दोनों नाम एक साथ लिखे हुये हैं। इस ग्रन्थ में कुछ 25 तरंग है। प्रथम तरंग के प्रारम्भ में लिखा है-

'अथ श्रीमन्महाराजाधिराजमहाराज राजराजेन्द्र महाराज श्री सवाई प्रतापसिंहजी विचार करि मनुष्यां का रोगां कौं दूरि करवाकैं वास्ते परम करूणा करिकैं चरक सुश्रुत वागभट्ट भावप्रकाश आत्रेयनें आदि लेकरिकैं वैद्यक का सर्व ग्रन्थां नें विचारि करिबांको सार काढ़ि अति संक्षेप ते सर्वरागां को निदान पूर्वक अमृतसागर नाम ग्रंथ करत्रौतीं की वचनिकाकरकें औषध्यां का अनेक प्रकार का अजमाया जतन विचार पूर्वक लिखजे हैं।[5]'

ग्रन्थ के प्रारम्भ में रोग विचार,नाड़ीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा, स्वप्नपरीक्षा, दूतपरीक्षा, साध्यसाध्यपरीक्षा आदि लिख कर अधारणीय वेगों के विषय में चर्चा करने के पश्चात् ज्वर की निदान-चिकित्सा का विस्तार से वर्णन किया गया है। इनमें दोषानुसार क्वाथ चूर्ण आदि लिखने के पश्चात् सन्निपात ज्वर में मृतसंजीवनी वटी, त्रिपुरभैरवरस तथा ब्रह्मास्त्र आदि रसों का वर्णन किया गया है।

इसके पश्चात तीसरे तरंग में अतिसार ग्रहणी का वर्णन किया गया है। ग्रहणी के प्रसंग में लिखा गया है कि -'प्रथम मनुष्य कु आतीसार हौय करि औ अतीसार तो जातौ रहै पाछे ओ मनुष्य कूपक्य करै तदि अग्निमंद होय सौ अग्नि मंद हुई थकी पूरष का उदर मैं रहती जौ छठी कला जीकौ नाम ग्रहणी छै सो वा मंदाग्नि बेंकलानै विगाडै छै सो वा कला बिगड़ी थकी काचा अन्न नै तो ग्रहण करै छै अर पाका अन्न नें गुदा द्वारा काढै छै इै वास्तै वैद्य हैं सोई रोग को नाम संग्रहणी कहयौ।[6]'

इसके पश्चात् अजीर्ण, अग्निमांद्य, पाण्डुकामला, रक्तपित्त आदि रोगों के निदान और चिकित्सा का वर्णन किया गया है। चिकित्सा को 'जतन' नाम दिया गया है। इनमें वैद्यों द्वारा व्यवहृत बडवानल चूर्ण, क्रव्यादरस, संजीवनीवटी, अग्निकुमाररस, पुनर्नवामण्डू, पेठा को अवलेह (कुष्माण्डावलेह), एलादिवटी आदि योगों के अतिरिक्त कतिपय मुष्टियोग भी लिखे गये हैं। इसके गजपुट का चित्र भी दिया है तथा जो योग लिखा गया वहाँ कहीं कहीं ग्रन्थ का भी उल्लेख किया गया है यथा - 'ये सर्व वैद्य विनोद मै लिष्यो छै'। इसमें तालीसादि चूर्ण, लंवगादिचूर्ण, अगस्त हरडै (अगस्त्यहरीतकी) आदि की निर्माण विधि लिखकर अन्त में लिखा है - 'इति राजयोग सोसरोग क्षयीरोग यांकी उत्पत्ति लक्षण जतन संपूरणम्' श्वास रोग के अन्तर्गत कंटकार्यावलेह को 'कट्याली को अवलेह' के नाम से उद्घृत किया है। इन रोगों का वर्णन कर पंचम तरंग को पूर्ण किया गया जहाँ स्पष्टरूप से इस ग्रन्थ के रचनाकार सवाई प्रतापसिंह जी को कहा गया-'इति श्रीमन्महाराजाधिराजमहाराज राजराजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंह जी विरचिते अमृतसागर नाम ग्रन्थे..'[7]।

इस भाषा से सिद्ध होता है कि विद्वान् लेखकों ने उन राजा के सम्मानार्थ उनको रचनाकार लिख दिया हो। इसी भाषा का आगे की तरंगों में भी प्रयोग किया गया है।

तत्पश्चात् षष्ठतरंग में स्वरभंग, अरुचि, छर्दि, तिसरोग (तृष्णा) और मूर्च्छा का तथा सप्तम तरंग में मदात्यय, दाह, उन्माद, मृगीरोग (अपस्मार) का सनिदान चिकित्सा का वर्णन किया गया है। उन्माद के प्रकरण में कई तंत्र-मंत्रों का भी उल्लेख किया गया है। यंत्रों के चित्र भी दिये गये हैं। अष्टम तरंग में वातव्याधिका विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें सभी वातरोगों का उल्लेख करते हुये उनके प्रसिद्ध योग लिखे गये हैं। इस प्रकरण में जो लक्षणपाकलिखा गया है, ऐसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता । यहाँ इस ग्रन्थ की भाषा उद्घृत न करते हुये इसकी निर्माण विधि का वर्णन करना उपयुक्त समझता हूँ-

इकपोतिया लहसुन 100 ग्राम लेकर छिलका हटा कर उनके छोटे छोटे बारीक टुकड़े कर लें और उसे दूध में डाल कर उबालें, दूध पूरा विनष्ट हो जाने पर नीचे उतार कर उसे पीस कर पिष्टी बनालें। इसे फिर घी में सेंके। दूध इतना ही लें जिसमें इसकी पिष्टी हो जाये और घृत भी इतना ही लें कि यह अच्छी तरह सिक जाय। फिर 50 ग्राम मिश्री की चाशनी बना कर लौंग 5 ग्राम, जायफल 2 ग्राम तथा दालचीनी 3 ग्राम पीसकर मिला लें और रसोनकल्क भी मिला लें। इसकी कुल पाँच मात्रा कर लें। एक-एक मात्रा प्रातः पाँच दिनों तक खालें। इसी प्रकार पुनः बनावें। इसे 21 दिनों तक अथवा रोग की उग्रता में 41 दिनों तक सेवन करने से वात रोगों का शमन होता है। यह पक्षाघात में अधिक उपयोगी है और हृदय के लिये भी बलप्रद है। इसमें 2 नग स्वर्ण वर्क डालने को कहा है इसकी उपयोगिता स्वर्ण के मिश्रण से अधिक बढ़ जाती है। इसके साथ ही 500 मिग्रा. कस्तूरी का भी उल्लेख है। कस्तूरी श्रेष्ठ वातशामक होने के साथ ही मस्तिष्क पोषक, नाड़ीबल्य,हृद्य तथा विषघ्न है, किन्तु आजकल इसकी उपलब्धता पर संशय है। यदि यह मिश्रित की जाये तो 'लषणपाक' वस्तुतः अधिक लाभकारी सिद्ध होगा।

नवम तरंग में उस स्तम्भ, आमवात, पित्तव्याधि और कफव्याधि का वर्णन किया गया है। दशम तरंग में वातरक्त का वर्णन है, जिसमें कहा गया है अमृतभल्लातकका सेवन करें और अलसी को या एरण्डबीज गिरी को दूध में पीस कर लेप करें। इसके अतिरिक्त शूलरोग वर्णित है, जिसमें अन्य प्रसिद्ध योगों साथ सौवर्चलादिगुटिका का भी उल्लेख है। इसमें संचरलूण (कालानमक) 10 ग्राम, अम्लवेत 20 ग्राम, जीरा 40 ग्राम और काली मिर्च 80 ग्राम निर्दिष्ट हैं। इन्हें बिजौरा नींबू के रस में घोटकर गोली बनाकर (250 मि.ग्रा.की) गरम जल से सेवन करें। ग्यारहवें तरंग में उदावर्त, गुल्म, हृदय रोग आदि का विस्तार से वर्णन है। सर्वत्र यह निर्देशित है कि यह योग कहाँ से लिया गया है जैसे-ओ चक्र दत्त में लिख्यों हैं, ओ भावप्रकाश में लिख्यों है आदि। बारहवें तरंग में मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी और प्रमेह का तथा तेरहवें में मेदोरोग, कार्श्यरोग (श्रीपणा को रोग), उदररोग का तत्पश्चात् चौदहवें तरंग में शोथ रोग, गलगण्ड, कंठमाला और इसके

बाद पन्द्रहवे में श्लीपद, व्रणशोथ, विदग्धि, भग्नआदि की निदान चिकित्सा विस्तार से लिखी है।

तरंग सोलह में भगन्दर, उपदंशआदि का, सतरह में शीतपित्त, अम्लपित्त, स्नायुक्त, फिरंग, मसूरिका, सीतला (बृहन्मसूरिका), बोदरी (रोमान्तिका) का वर्णन किया गया है। शीतला के प्रसंग में अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त स्कन्दपुराण में वर्णित शीतलाष्टक का भी उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार तरंग अठारह में क्षुद्ररोग, शिरोरोग, नेत्ररोग, नासारोग और मुखरोगों का वर्णन है। तरंग 19 में विषरोग का और 20 में स्त्री रोगों का तथा 21 में बालरोगों का वर्णन है।

तरंग 22 में वाजीकरण का प्रकरण है, जिसमें आम्रपाक वानरीगुटिकाआदि का वर्णन है। तरंग 23 में रसायनप्रकरण के अन्तर्गत चन्द्रोदय, वसन्तमालती आदि का प्रतिपादन हुआ है। इसमें मूशलीपाक, दशमूलासव के अतिरिक्त शिलाजीत के प्रयोग भी लिखे गये हैं। शेष तरंग 24 में पूर्वकर्म, पंचकर्म का तथा अन्तिम तरंग 25 में दिनचर्या, रात्रिचर्या का सविस्तार वर्णन किया गया है। महाराजा सवाई प्रतापसिंह की आज्ञा से पं. श्रीधर शिवलाल ने इस ग्रन्थ में स्थान स्थान पर अपनी टिप्पणी भी लिखी है। यथा हि- 'रास्ना नाम औषधी जीनैं रामसेण बी कहै छै या औषधी वातव्याधि दूर करै छै और गर्भ नै पोषण करै छैं'।

इस ग्रन्थ में ओषधियों की मात्रा के लिये टंक तौल का प्रयोग किया गया है, एक टंक = तीन ग्राम समझना चाहिए। इस ग्रन्थ के प्रेरक लेखक का निधन 1 अगस्त 1803 में हुआ अतः यह ग्रन्थ सन् 1778 से 1803 के मध्य ही लिखा गया है।

सामान्य जन जो संस्कृत में लिखे गये विस्तृत ग्रन्थों का अध्ययन करने में असमर्थ हैं और वे आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिये स्थानीय लोक भाषा में यह ग्रन्थ लिखा या लिखवाया गया था। आज इसकी समयानुकूल समीक्षा की आवश्यकता है, जिससे यह ग्रन्थ तुलसी के रामचरितमानस की भांति घर घर में पहुँच कर आयुर्वेदीय ओषधियों की जन जन को जानकारी करा सके और उन्हें लाभ पहुँचा सके।

सन्दर्भ-

1. जयपुर वैभवम् (जयनगरवर्णनम्, पद्य 6)
2. ब्रजनिधिपदसंग्रह
3. अमृतसागर-भूमिका
4. आयुर्वेदज्योति
5. अमृतसागर - प्रथमतरंग
6. अमृतसागर - तृतीयतरंग
7. अमृतासागर-पुष्पिका